कालज्ञान

कालज्ञान
कालज्ञान
कालज्ञान
कालज्ञान

खेमराज श्रीकृष्णदास प्रकाशन,
बम्बई-४

कालज्ञानम्

मथुरानिवासिमाथुरदत्तरामविरचित-

भाषाटीकासमेतम्

मुद्रक एवं प्रकाशकः

खेमराज श्रीकृष्णदास,

अध्यक्ष : श्रीवेंकटेश्वर प्रेस,

खेमराज श्रीकृष्णदास मार्ग, मुंबई-४०० ००४

संस्करण : फरवरी २०१८, संवत् २०७४

मूल्य : ४० रुपये मात्र ।

© सर्वाधिकार : प्रकाशक द्वारा सुरक्षित

मुद्रक एवं प्रकाशकः
खेमराज श्रीकृष्णदास,™
अध्यक्ष : श्रीवेंकटेश्वर प्रेस,
खेमराज श्रीकृष्णदास मार्ग,
मुंबई - ४०० ००४.

Printers & Publishers
Khemraj Shrikrishnadass
Prop: Shri Venkateshwar Press
Khemraj Shrikrishnadass Marg,
7th Khetwadi, Mumbai - 400 004.

Web Site : http://www.khe-shri.com
E-mail : khemraj@vsnl.com

Printed by Sanjay Bajaj for M/s Khemraj Shrikrishnadass
Prop. Shri Venkateshwar Press, Mumbai-400004,
at their Shri Venkateshwar Press, 66 Hadapsar Industrial Estate,
Pune -411 013.

॥ श्रीः ॥

अथ कालज्ञानभाषाटीकाकी विषयानुक्रमणिका।

॥ इत्यनुक्रमणिका समाप्ता ॥

॥ श्रीः ॥

अथ कालज्ञानम्.

भाषाटीकासमेतम् ।

कालज्ञानं प्रवक्ष्यामि यदुक्तं शंभुना स्वयम् ।
येन विज्ञानमात्रेण त्रिकालज्ञो भवेन्नरः ॥

अर्थ—अब हम कालज्ञानको कहते हैं । जो साक्षात् श्रीशिवने कहाहै । जिसके जानने मात्रसेही यह मनुष्य त्रिकालज्ञ अर्थात् भूत भविष्य और वर्तमानका जाननेवाला होता है ॥

कालेन सृजते ब्रह्मा कालेन हरते हरः ।
कालेन पाति विष्णुश्च तस्मात्कालं च चिंतयेत् ॥

अर्थ—अब कालको मुख्यत्व दिखाते हैं—जैसे कि, ब्रह्मा काल करके सृष्टिको रचे हैं, श्रीरुद्र संहार करे हैं और विष्णु उसी कालकरके जगत्को पालन करते हैं अतएव वैद्य कालको चिंतवन करै ॥

कालज्ञानं कलायुक्तं शम्भुना यच्च भाषितम् ।
येन षण्मासतो मृत्युः पूर्वं ज्ञायेत रोगिणाम् ॥

अर्थ—श्रीशिवका कहा कलायुक्त (शक्तिसहित अथवा छलयुक्त) कालज्ञान जिसके जाननेसे छःमहीने पहले रोगियोंकी मृत्युको वैद्य जानसकता है [उसको कहते हैं] ॥

कालः सृजति भूतानि कालः संहरते प्रजाः ।
कालः सुप्तेषु जागर्ति तस्मात्कालं च चिंतयेत् ॥

अर्थ–कालही प्राणियोंको उत्पन्न और संहार करता है, तथा प्राणियोंके सोनेपर भी काल जागता रहता है । अतएव कालको चिंतवन करै ॥

काले देवास्तथा नागा यक्षाश्चासुरपन्नगाः ।
विद्याधरा मनुष्याश्च सर्वे नश्यंति कालतः ॥

अर्थ–कालमें देव, नाग, यक्ष असुर, पन्नग, विद्याधर और मनुष्य सर्व नष्ट होते हैं ॥

विरंचिदिनमध्ये तु पतन्तीन्द्राश्चतुर्दश ।
सोऽपि चाब्दशतांते तु स्वयं कालेन नश्यति ॥

अर्थ–जिसके १ दिनमें चौदह इन्द्र पतन होते हैं ऐसाभी ब्रह्मदेव सौ वर्षके अन्तमें कालकरके स्वयं नष्ट होताहै ॥

मानुषस्तु शतंजीवी पुरा वेदेषु भाषितम् ।
सोपि कालप्रभावेण विनश्यति न संशयः ॥

अर्थ–वेदमें यह लिखा है कि, मनुष्य सौ वर्ष जीता है परंतु वह सौ वर्षके उपरांत कालके प्रभावकरके नष्ट होता है ॥

वर्षा शीतं तथा चोष्णं प्रत्यूषं मध्यमं दिनम् ।
अपराह्णं तथा नक्तं रूपं कालस्य कथ्यते ॥

अर्थ-वर्षा, शीत, गरमी, प्रातःकाल, मध्याह्न, अपराह्ण तथा

रात्रि ये कालकेही रूप हैं अर्थात् इन्हीमें यह जीव मरता है ॥

काले फलंति तरवः काले बीजं प्ररोहति ।
काले पुष्पवती नारी सर्वं कालेन जायते ॥

अर्थ–कालमें वृक्ष फलते हैं । कालमें बीज उपजता है । कालमें स्त्री रजो दर्शवती होती है । एवं यावन्मात्र वस्तु हैं सब काल करके होती हैं ।

कालेऽशनं च तोयं च काले मेघः प्रवर्षति ।
काले कर्म समुद्दिष्टं विपरीतं न शोभनम् ॥

अर्थ–कालमें भोजन पान होता है, मेघ वर्षता है और जिसकालमें जो कर्म करना कहा है, उसमें करनेसे शुभ होता है और विपरीत करनेसे शुभ नहीं है ।

कालाग्निर्जठरे जातस्तस्य वाञ्छा चतुर्विधा ।
आहारमुदकं निद्रा कामश्चैव चतुर्थकः ॥

अर्थ–जब कालाग्नि उदरमें होतीहै तब उसप्राणीकी इच्छा चार प्रकारकी होतीहै भोजन, जल, निद्रा और चौथा कामदेव ॥

षट्चक्रं षोडशाधारं त्रिलक्षं व्योमपञ्चकम् ।
स्वदेहे यो न जानाति कथं वैद्यः स उच्यते ॥

अर्थ–जो वैद्य अपनी देहमें स्थित छः चक्र सोलह आधार और तीन लक्षण व्योम पंचकको नहीं जाने उसको वैद्य किसप्रकार कहना चाहिये ? ॥

तत्रादौ षट्चक्रान्याह ।

प्रथमं ब्रह्मचक्रं तु लिंगचक्रं द्वितीयकम् ।
तृतीयं नाभिचक्रं तु हृदि चक्रं चतुर्थकम् ॥
पंचमं कंठचक्रं तु भ्रुवोर्मध्ये तु षष्टकम् ।
एतानि षट् च चक्राणि यो जानाति स वैद्यराट् ॥

अर्थ—अब छः चक्रोंको कहते हैं—ब्रह्मरंध्र अर्थात् कपाल प्रथमचक्र है, दूसरा लिंगचक्र, तीसरा नाभिचक्र, चतुर्थ हृदयचक्र, पंचम कंठचक्र और भौहोंके बीचमें छठा चक्र है, इन छः चक्रोंको जो जानता है वह वैद्योंका राजा है।

मतान्तर ।

प्रथमं कपाटचक्रं ज्योतिश्चक्रं द्वितीयकम् ।
तृतीयं नाभिचक्रं तु हृदि चक्रं चतुर्थकम् ॥
पञ्चमं नासिकाचक्रं गुदचक्रं तु षष्ठकम् ।
एतानि षट् च चक्राणि यो हि वेत्ति स वैद्यभाक् ॥

अर्थ—मतांतरसे कहते हैं-प्रथम कपाट (वक्षःस्थल) चक्र है दूसरा ज्योतिः (प्राण) चक्र है तृतीय नाभिचक्र, हृदयचक्र चौथा, पाँचवा नासिकाचक्र और गुदाचक्र छठा इन छः चक्रोंको जो जानता है वह वैद्य शब्दका भागी है ॥

अथ षोडशाधाराण्याह ।

अहंकारो मनो बुद्धिश्चित्तं कारणमेव च ।
प्राणोऽपानः समानश्च उदानो व्यान एव च ॥

पृथ्वी आपश्च तेजश्च वायुराकाश एव च ।
ज्योतीरूपं च तत्रैव षोडशाधार उच्यते ॥

अर्थ–सोलह आधार ये हैं-जैसे १अहंकार, २मन, ३बुद्धि, ४चित्त, ५कारण, ६ प्राण, ७ अपान, ८ समान, ९ उदान, १० व्यान, ११ पृथ्वी, १२ जल, १३ तेज, १४ वायु, १५आकाश और १६ ज्योतिरूपजीव ये इस देहमें सोलह आधार हैं ॥

त्रिलक्षाण्याह ।

ऊर्द्ध्वलक्षं भवेत्तालौ मध्यलक्षं भवेद्धृदि ।
अधोलक्षं भवेन्नाभ्यां लक्षातीतं निरञ्जनम् ॥

अर्थ–तालुएमें ऊर्ध्वलक्ष (जाननेयोग्य) है । हृदयमें मध्यलक्ष है और नाभिमें अधोलक्ष है परंतु जो लक्षमें न आवे ऐसा निरंजन (परमात्मा) है ॥

एकस्तंभं नवद्वारं त्रिशून्यं पञ्चदेवताः ।
पञ्चेन्द्रियकुटुंबेषु यत्रात्मा तत्र मे गृहम् ॥

अर्थ–एकस्तंभ (अहंकार रूपखंभ),नवद्वार (नेत्र नासिका आदि नौ दरवाजे), तीन शून्य (रज-सत्त्व-तम),पंच देवता (पंचतत्त्वदेवरूप) और पंचेन्द्रिय सोई हुआ कुटुम्ब इनमें जहाँ आत्मा है, वही मेरा घर है, ये व्योमपंचक हुए ॥

कुविंशतिसहस्राणि षट्शतान्यधिकानि च ।
निशाह्नि चलते प्राणः सोऽपि स्तंभोऽत्र कथ्यते ॥

अर्थ-२१६०० इक्कीस हजार छःसौ श्वास इस प्राणीके दिनरातमें चलते हैं इसको स्तंभभी कहते हैं ॥

आत्मा शरीरमित्युक्तमन्तरात्मा मनो विदुः ।
परमात्मा भवेत्प्राणःपञ्च तत्त्वानि धारयेत् ॥

अर्थ-शरीरको आत्मा, मनको अन्तरात्मा और प्राणोंको परमात्मा कहते हैं, येही पंचतत्त्वोंको धारण करते हैं ॥

कायानगरमध्ये तु प्रतोली शून्यवद्भवेत् ।
नरेन्द्रो गच्छते तेन तत्पुरं शून्यकं भवेत् ॥

अर्थ-देहरूप नगरमें नस, नाडी और इन्द्रिय आदि जो गली हैं ये शून्य होजातीहैं अर्थात् इनके कार्य बंद होजातेहैं तब प्राणरूप राजा उस गलीमें होकर निकल जाता है, तब यह देहरूप पुर शून्य होजाता है ॥

स्वरोदयमतात् ।

कायानगरमध्ये तु मारुतो रक्षपालकः ।
प्रवेशो दशभिः प्रोक्तो द्वादशाङ्गुलनिर्गमः ॥

अर्थ-अब स्वरोदयके मतसे कालज्ञानको कहतेहैं कि, इस देहरूप नगरमें श्वासरूप पवनही रखवाली वाला है उसका १० अंगुल करके प्रवेश और बारह अंगुल निर्गम कहाहै इससे न्यूनाधिक अरिष्ट होनेका चिह्न है ॥

उदयं सूर्यमार्गेण चन्द्रेणास्तमयं यदि ।
ददाति गुणसंघातं विपरीतं विनाशकृत् ॥

अर्थ–स्वरका उदय नासिकाके दहिने मार्गसे हो और वाममार्गसे अस्त होवे तो अत्यन्त गुणदाता इससे विपरीत हो अर्थात् वाम स्वरसे उदय और दहिने स्वरसे अस्त होवे तो विनाश करता है ॥

संपूर्णं वहते सूर्यः सोमश्चैव न दृश्यते ।
पक्षेण जायते मृत्युः कालज्ञानेन भाषितम् ॥

अर्थ–यदि सदैव दहना स्वर चले, वाम स्वर कभी चले नहीं उस प्राणीकी १५दिनमें मृत्यु हो यह कालज्ञानने कहाहै ॥

मासश्चैव तु षण्मासः पक्षश्चैव त्रिमासकः ॥
पंचरात्रिर्वहेच्चैकस्तस्य मृत्युर्न संशयः ॥

अर्थ–जिस प्राणीका एकही स्वर एक महीने या छः महीने या एक पक्ष तथा तीन महीने या पाँच रात बराबर चले उसकी निस्संदेह मृत्यु हो ॥

शुक्लपक्षे वहेद्वामं कृष्णपक्षे च दक्षिणम् ।
उभयोस्त्रीणि दिवसं दृश्यते चंद्रसूर्ययोः ॥

अर्थ–शुक्लपक्षमें प्रथम वामस्वर चलता है और कृष्णपक्षमें दहना स्वर, एवं शुक्ल-कृष्ण-पक्षोंमें चंद्र और सूर्य दोनों स्वर तीन २ दिन चलते हैं ॥

पञ्चभूतात्मकं दीपं चन्द्रस्नेहेन पूरितम् ।
रक्षेच्च सूर्यवातेन तेन जीवः स्थिरो भवेत् ॥

अर्थ–यह पंचभूतात्मक देहरूप दीपक चंद्रस्वरूप तेलसे

भराहुआ है, इसको सूर्यस्वरूप पवनसे रक्षा करनी चाहिये तो यह जीव स्थिर रहै ॥

आत्मा दीपः सूर्यज्योतिरायुः स्नेहः कलात्मकः ।
कायाकज्जलसंसारे वृत्तिरेखा तनोर्मता ॥

अर्थ-आत्मारूप दीपक सूर्यस्वरूप ज्योति, आयुरूपी तेल भराहै, इंसमें कायारूपी कज्जल है और इस संसारमें इस प्राणीकी वृत्ति है वोही इस देहकी रेखा कही है।

अरुंधतीं ध्रुवं चैव विष्णोस्त्रीणि पदानि च ।
आयुर्हीना न पश्यति चतुर्थं मातृमंडलम् ॥

अर्थ-अरुंधती, ध्रुव और विष्णुके त्रिपद (श्रवण नक्षत्रके तीन तारे) एवं चतुर्थ मातृमंडल (कृत्तिकाके छः तारे) इनको हीनायु मनुष्य नहीं देखते ॥

अरुंधती भवेज्जिह्वा ध्रुवो नासाग्रमेव च ।
विष्णुस्तु भ्रूद्वयोर्मध्ये भ्रूद्वयं मातृमंडलम् ॥

अर्थ-इस कालज्ञानमें अरुन्धती जीभको कहते हैं और नासाका अग्रभाग है वोही ध्रुवका तारा है। दोनों भौंहका बीच है वोही विष्णुपद है और दोनों भौंहको मातृमंडल कहते हैं अर्थात् मरणासन्न मनुष्य इनको नहीं देख सकता ॥

अक्षैर्लक्षितलक्षणेन पयसा पूर्णेन्दुना भानुना ।
पूर्वादक्षिणपश्चिमोत्तरदिशां षट्त्रिद्विमासैककम् ॥

छिद्रं पश्यति चेत्तदा दशदिनं धूम्राकृतिं पश्चिमे
ज्वालांपश्यतिसद्य एव मरणंकालोचितज्ञानिनाम्॥

अर्थ—जो रोगी जलमें सूर्य अथवा चंद्र इनके प्रतिबिंबमें पूर्वकी ओर या दक्षिणकी या पश्चिम अथवा उत्तरकी तरफ छिद्र देखै तो क्रमसे छः, तीन, दो और एक इतने महीने बचे और सूर्यचंद्रका धूम्रवर्ण देखै तो दश दिन और उस प्रतिबिंबके पश्चिमकी तरफ ज्वाला देखै तो तत्काल मरण हो । यह कालज्ञानके जाननेवालोंने कहा है ॥

मरणमें अरिष्टको मुख्यत्व ।

पुष्पं यथापूर्वरूपं फलस्येह भविष्यतः ।
तथा लिंगमारिष्टाख्यं पूर्वरूपं मरिष्यतः ॥
अप्येव तु भवेत्पुष्पं फलेनाननुबंधि यत् ।
फलं चापि भवेत्किंचिद्यस्य पुष्पं न पूर्वजम् ॥

अर्थ--जैसे पुष्प होनेवाले फलका बोधक अर्थात् वृक्षमें फूलके आतेही अनुमानद्वारा निश्चय होता है कि अब इसमें फलभी आवेगा उसीप्रकार अरिष्टलक्षण (निश्चय मरणसूचक चिह्न) द्वारा भावी (होनहार) मृत्युका निश्चय होता है । अनेक पुष्पोंमें फल नहीं आते हैं, इसीप्रकार कोई २ पुष्पके विनाभी होते हैं (जैसे गूलर, पीपरमें) ॥ परन्तु—

न त्वरिष्टस्य जातस्य नाशोऽस्ति मरणादृते ।
मरणं चापि तन्नास्ति यन्नारिष्टपुरःसरम् ॥

मिथ्यादृष्टमरिष्टाभमनरिष्टमजानता ।
अरिष्टं चाप्यसंबुद्धमेतत्प्रज्ञापराधजम् ॥

अर्थ-परन्तु अरिष्टचिह्नके होनेसे अवश्य मृत्यु होवै वह मृत्युही नहीं जिसमें प्रथम अरिष्ट लक्षण उपस्थित न हो। अनेक जगह ऐसा बोध होता है कि, अरिष्टलक्षण हुए हैं और रोगीकी मृत्यु नहीं हुई और कहीं २ मृत्यु होगई, परन्तु मृत्युके पूर्व कोई अरिष्टचिह्न दृष्टि नहीं आये। परंतु ऐसा बोध भ्रमात्मक है इसमें कोई सन्देह नहीं है। जिसको वैद्य अरिष्ट जानता है वह प्रकृति अरिष्टचिह्न नहीं था अज्ञानसे उसको ऐसा भ्रम होगया ॥

तानि सौक्ष्म्यात्प्रमादाद्वा तथैवाशु व्यतिक्रमात् ।
गृह्यन्ते नोद्धतान्यज्ञैर्मुमूर्षुर्न त्वसंभवात् ॥
असिद्धिमाप्नुयाल्लोके प्रतिकुर्वन्गतायुषः ।
अतोरिष्टानि यत्नेन लक्षयेत्कुशलोभिषक् ॥

अर्थ-किसी २ मृत्युके पूर्व अरिष्टलक्षण संपूर्ण जाने नहीं जाते इसका यह कारण है कि, ये उक्तलक्षण समस्त जो हैं वो अत्यन्त सूक्ष्म (बारीक) रूपसे उठतेहैं अथवा जल्दी २ एक लक्षणके होनेपर दूसरा लक्षण होने लगताहै। उसका अनुमान मरनेवाले रोगीको नहीं होता अथवा जैसे ये अरिष्टका ज्ञानहो ऐसा विशेष मनको नहीं लगता। इसीसे यथार्थ ज्ञान नहीं होता इसीसे निश्चय हुआ कि, मृत्युके पूर्व ये अरिष्ट लक्षण अवश्य

उत्पन्न तो होतेहैं, परंतु उस समय यह निश्चय नहीं करता इसमें निश्चय नहीं होनेका कारण अज्ञानता अथवा यथार्थ निश्चयात्मक मनका न लगाना मात्र है ॥

गतायु मनुष्यकी चिकित्सा करनेसे अवश्य व्यर्थ परिश्रम होता है [अर्थात् उसको यश और धन इनमेंसे किसी वस्तुकी प्राप्ति नहीं होती] अत एव वैद्यको समस्त अरिष्ट लक्षणोंका जानना अति आवश्यक है ॥

अथातः पंचेन्द्रियार्थविप्रतिपत्तिमध्यायं व्याख्यास्यामः ।

अब पंचेन्द्रियार्थ विप्रतिपत्ति अध्यायकी व्याख्या करेंगे—

शरीरशीलयोर्यस्य प्रकृतिर्विकृतिर्भवेत् ।
तत्त्वरिष्टं समासेन व्यासतस्तु निबोध मे ॥

अर्थ—जिस प्राणीके शरीर मानसिक स्वभाव और प्रकृति ये तीनों पलटजावें वे मरणके लक्षण हैं यह मैंने संक्षेपसे कहा अब इनको हे वत्स ! तू विस्तारसे सुन ॥

कर्णेन्द्रियकी विकृति ।

शृणोति विविधाञ्छब्दान्यो दिव्यानामभावतः ।
समुद्रपुरमेघानामसंपत्तौ च निःस्वनम् ॥
तान्स्वनान्नावगृह्णाति मन्यते चान्यशब्दवत् ।

ग्राम्यारण्यस्वनांश्चापि विपरीताञ्छृणोत्यपि ॥
द्विषच्छब्देषु रमते सुहृच्छब्देषु कुप्यति ।
न शृणोति च योऽकस्मात्तं ब्रुवंति गतायुषम् ॥

अर्थ—जो मनुष्य विविधशब्द (बोलना, पाठ, गीत, बाजे आदि) और दिव्य (सिद्ध, गंधर्व, किन्नर आदिके) तथा समुद्र, पुर, मेघ आदिके न होनेपर इनका शब्द सुने, अथवा इन समुद्रादिके होनेपर भी इनका शब्द न सुने, अथवा इनके शब्दको औरही शब्दके समान सुने तथा ग्रामके शब्दोंको वनके शब्दसमान सुने और वनके शब्दोंको ग्रामके शब्दसमान सुने, एवं शत्रुके वाक्यमें प्रीति करे और माता, पिता, भाई, मित्रादिके शब्दको सुनकर कुपित हो, अथवा सुनते २ अकस्मात् न सुने उस प्राणिको गतायु (मरणासन्न) जानना ये कर्णेन्द्रियके चिह्न कहे ॥

त्वचाकी विकृति ।

यस्तूष्णमिव गृह्णाति शीतमुष्णं च शीतवत् ॥
संजातशीतपिडको यश्च दाहेन पीडयते ॥
उष्णगात्रोऽतिमात्रं च यः शीतेन प्रवेपते ।
प्रहाराञ्नाभिजानाति योऽङ्गच्छेदमथापि वा ॥
पांशुनेवावकीर्णानि यश्च गात्राणि मन्यते ।
वर्णान्यभावो राज्यो वा यस्य गात्रे भवंति हि ॥

स्नातानुलिप्तं यश्चापि भजंते नीलमक्षिकाः ।
सुगंधिर्वातियोऽकस्मात्तं वदंति गतायुषम् ॥

अर्थ–अब रोगीके स्पर्शकी विप्रतिपत्ति (विपरीतता) दिखाते हैं कि, जो मनुष्य शीतलवस्तुको गरमके समान ग्रहण करे और गरमवस्तुको शीतलके समान, एवं शीतपिडिका देहमें होनेपरभी दाहके मारे पीडितहो । जिसका देह गरम हो परन्तु मारे शीतके थरथर कांपे और लकडी तलवार आदिकी चोट लगनेको तथा अंग कटजानेकोभी न जाने, एवं जो अंगोंको धूलसे आच्छादित माने, तथा देहका वर्ण पलटजावे अथवा जिसके देहमें काली, लाल रेखा होजावें एवं तत्काल स्नान करा हो और चन्दनादि लेपभी कर रक्खा हो इसप्रकार सुगंधितदेहवालेके देहमें नीलीमक्खी चारोंतरफसे आनकर बैठें, तथा जिसकी देहमें अकस्मात् सुगन्ध आने लगे वो १ वर्षमें अवश्य मरे ॥

विपरीतेन गृह्णाति रसान् यश्चोपयोजितान् ।
उपयुक्ताः क्रमाद्यस्य रसा दोषाभिवृद्धये ॥
यस्य दोषाग्निसाम्यं च कुर्युर्मिथ्योपयोजिताः ।
यो वा रसान्नं संवेत्ति गतासुं तं प्रचक्षते ॥

अर्थ–जो मनुष्य खट्टेरसको मीठा और मीठेरसको खट्टा इसीप्रकार सर्व रसोंको विपरीत जाने और क्रमपूर्वक सेवन करेहुएभी मधुरादिरस दोषोंको बढावें और जो जो वैपरीत्यसे

सेवन करे हुए रस दोष और अग्निको समानता करें (अर्थात् हितकारी पदार्थ उपद्रव करे और उपद्रवकारी पदार्थ जिसको हितहो) तथा जो अन्नके रसको न जाने उसको गत आयु जानना यह एक महीनेमें मरे ॥

सुगंधं वेत्ति दुर्गंधं दुर्गंधस्य सुगंधिताम् ।
यो वा गंधान्न जानाति गतासुं तं विनिर्दिशेत् ॥

अर्थ–जो मनुष्य सुगंधको दुर्गन्ध और दुर्गन्धको सुगंध समझे अथवा जो सुगंध और दुर्गन्ध किसीको न जाने उसे गतप्राण जानना येभी एक महीनेमें मरताहै ॥

द्वंद्वान्युष्णहिमादीनि कालावस्था दिशस्तथा ।
विपरीतेन गृह्णाति भावानन्यांश्च यो नरः ॥
दिवाज्योतींषि यश्चापि ज्वलितानीव पश्यति ।
रात्रौ सूर्यं ज्वलंतं वा दिवा वा चन्द्रवर्चसम् ॥
अमेघोपप्लवे यश्च शक्रचापतडिद्गुणान् ।
तडित्वंतोऽसितान्यो वा निर्मले गगने घनान् ।
विमानयानप्रासादैर्यश्च संकुलमंबरम् ॥
यश्चानिलं मूर्तिमंतमन्तरिक्षं च पश्यति ।
धूमनीहारवासोभिरावृतामिव मेदिनीम् ॥
प्रदीप्तमिव लोकं च यो वा प्लुतमिवाम्भसा ।
भूमिमष्टापदाकारां लेखाभिर्यश्च पश्यति ॥
न पश्यति सनक्षत्रां यश्च देवीमरुंधतीम् ।

ध्रुवमाकाशगंगां वा तं वदंति गतायुषम् ॥

अर्थ–जो मनुष्य गरमी, शरदी कालकी अवस्था (प्रवात निर्वात और वर्षादि) और दिशा इनको तथा अन्यभाव कहिये द्रव्य गुण कर्मादिकोंको विपरीततासे ग्रहण करे वो १ मासमें मरे ॥ अब रूपग्रहणको दिखाते हैं कि, जो मनुष्य दिनमें ज्योतिवाले पदार्थ (सूर्यचंद्रआदिको) अग्निके समान जलतेसे देखे और रात्रिमें सूर्यको प्रज्वलित देखे अथवा दिनमें सूर्यको चंद्रमाके समान शीतल तेजवाला देखे । एवं विना बादलके जो इंद्रधनुष और बिजली चमकती देखे, तथा बिजलीवाले बादलोंको काले पीले देखे और निर्मल आकाशको बादलोंसे व्याप्त देखे तो दो या तीन महीनेमें मरे । जो मनुष्य आकाशको विमान, यान (रथ, घोडा, हाथी आदि) और महलोंसे व्याप्त देखे तथा चलतीहुई पवनको मूर्तिमान् (देवताके आकार अथवा अन्यपुरुषाकार) देखे तथा विना नेत्ररोगके जो मनुष्य पृथ्वीको धूआं, कुहिरा और वस्त्रोंसे आच्छादित देखे तथा विना ग्रीष्मऋतुके जगत्को फूँकता हुवा देखे तथा जलमें डूबाहुवा देखे, तथा पृथ्वीको रेखाखचित चतुष्पथके आकार देखे और जो मनुष्य नक्षत्रसहित अरुंधती ध्रुवका तारा और शिशुमारचक्रको न देखे वो मरणके समीप जानना ॥

ज्योत्स्नादर्शोष्णतोयेषु छायां यश्च न पश्यति ।

पश्यत्येकांगहीनां वा विकृतां वाऽन्यसत्त्वजाम् ।
श्वकाककंकगृध्राणां प्रेतानां यक्षरक्षसाम् ।
पिशाचोरगनागानां भूतानां विकृतामपि ॥
यो वा मयूरकंठाभं विधूमं वह्निमीक्षते ।
आतुरस्य भवेन्मृत्युःस्वस्थो व्याधिमवाप्नुयात् ॥

अर्थ-जो मनुष्य धूप चांदनी आदि प्रकाशमें दर्पण पसीने और जलमें अपनी छायाको न देखे यदि देखे तो (हाथ पैर मस्तक आदि) एक अंगरहित देखे, अथवा विकृत तथा अन्यसत्व (और प्राणी गधा कुत्ते आदि) कीसी देखे तथा, कुत्ता, काक, कंक, गीध, प्रेत, यक्ष. राक्षस, पिशाच, सर्प, नाग और मनुष्य इनकी छायाको विकृत देखे । तथा जो मनुष्य धुआंरहित अग्निका वर्ण मोरकंठके समान नील देखे तो आतुर (रोगी) की मृत्यु होवे और नैरोग्य पुरुष देखे तो रोगी होय इति ॥

अथातश्छायाविप्रतिपत्तिरूपमध्यायं व्याख्यास्यामः ।

अर्थ-अब छायाविप्रतिपत्तिरूप अध्यायकी व्याख्या करेंगे, इस जगे छायाशब्दके पश्चात् ह्री, श्री, तुष्टयादिकीभी विपरीतता जाननी अर्थात् इनकीभी व्याख्या करेंगे:-

श्यावा लोहितका नीला पीतिका वापि मानवम्
अभिद्रवन्ति यं छायाः स परासुरसंशयम् ॥

अर्थ–अब छायाकी विपरीतता दिखाते हैं जैसे कि, जिस पुरुषके साथ काली, लोहित (लाल) नीली और पीली छाया दीखे वो गतप्राण जानना अर्थात् मरेगा ॥

ह्रीश्रियौ नश्यतो यस्य तेज ओजः स्मृतिः प्रभा ।
अकस्माद्यं भजंते वा स परासुरसंशयम् ॥

अर्थ–अब प्रभाकी विपरीतता दिखाते हैं–जिस रोगीकी लज्जा, लक्ष्मी, तेज, ओज, स्मरणशक्ति और कांति ये अकस्मात् जाती रहें अथवा जो लज्जा आदिसे रहित हो वह अकस्मात् लज्जा आदियुक्त होजावे तो वह मनुष्य अवश्य मरे ॥

यस्याधरोष्ठः पतितः क्षिप्तश्चोर्ध्वं यथोत्तरः ।
उभौ वा जाम्बवाभासौ दुर्लभं तस्य जीवितम् ॥

अर्थ–जिसका नीचेका होठ नीचेको गिरपडे और ऊपरका होठ ऊपरको चिपटजावे, अथवा दोनों होंठ जामुनके समान काले होजाँय उस मनुष्यका जीना कठिन है ॥

आरक्ता दशना यस्य श्यावा वा स्युः पतंति च ।
खञ्जनप्रतिमावापि तं गतायुषमादिशेत् ॥

अर्थ–जिस मनुष्यके दांत लाल अथवा काले होजावें, अथवा गिरपडें या खंजन पक्षीके समान सफेद और काले हो जावें उसे गतायु अर्थात् मरेगा ऐसा जाने ॥

कृष्णा स्तब्धावलिप्ता वा जिह्वा शूना च यस्य वै ।
कर्कशा वा भवेद्यस्य सोऽचिराद्विजहात्यसून् ॥

अर्थ-जिसकी जीभ काली, लठर, कफसे ल्हिसी, सूजी और कठोर होजावे वह थोडे समयमें मरेगा ऐसा वैद्य जाने । यह एक महीनेमें मरे है ॥

कुटिला स्फुटिता वापि शुष्का वा यस्य नासिका ।
अवस्फूर्जति मग्ना वा न स जीवति मानवः ॥

अर्थ-जिसकी नाक टेढी, फटीसी, सूखीसी और शब्द-युक्त हो, अथवा भीतरको बैठजावे वह मनुष्य नहीं जीवे । यह मनुष्य सात रात्रिमें मरे है ॥

संक्षिप्ते विषमे स्तब्धे रक्ते स्रस्ते च लोचने ।
स्यातां वा प्रस्नुते यस्य स गतायुर्नरो ध्रुवम् ॥

अर्थ-जिसके नेत्र संकुचित, ऊँचे नीचे, निश्चेष्ट, लाल और नीचेको गिरजावें, अथवा जल बहे वो मनुष्य निश्चय गतायु जानना ।

केशाःसीमंतिनो यस्य संक्षिप्ते विनते भ्रुवौ ।
लुनंति चाक्षिपक्ष्माणि सोचिराद्याति मृत्यवे ॥

अर्थ-जिसके बालोंकी बेनीसी गुँथजावे और दोनों भौंहें संकुचित और नीचेको गिरजावें और जो पलकोंके बालोंको वारंवार खोले, मूँदे वो थोडे कालमें यमराजके गृहको पधारे। यदि ये लक्षण नैरोग्य पुरुषके हों तो वो छः महीनेमें मरे और रोगी तीन दिनमें मरे।

नाहरत्यन्नमास्यस्थं न धारयति यः शिरः ।
एकाग्रदृष्टिर्मूढात्मा सद्यः प्राणाञ्जहाति सः ॥

अर्थ—अब देहके अवयव क्रियाकी विपरीतताको कहते हैं—जैसे कि, जो मनुष्य मुखमें धरेहुए अन्नको न निगले और जो मस्तकको धारण न करे अर्थात् गेरगेर देवे, एकही स्थानमें दृष्टि लगायदे, शीलता जातीरहे वह तत्काल प्राणोंको परित्याग करे ॥

बलवान्दुर्बलो वापि संमोहं योऽधिगच्छति ।
उत्थाप्यमानो बहुशस्तं धीरः परिवर्जयेत् ॥

अर्थ—बलवान् हो या दुर्बल हो जिसको बहुतसा उठानेपरभी वारंवार मूर्च्छा आवे उसको धीरपुरुष त्याग दे ॥

उत्तानः सर्वदा शेते पादौ विकुरुते च यः ।
विप्रसारणशीलो वा न स जीवति मानवः ॥

अर्थ—जो सदैव चित्त सोवे और पैरोंको कभी उठावे कभी धरे कभी मोडे इत्यादि विकृत करे, अथवा सुकडेही रक्खे वो रोगी नहीं जीवे॥

शीतपादकरोच्छ्वासश्छिन्नश्वासश्च यो भवेत् ।
काकोच्छ्वासश्च यो मर्त्यस्तं धीरः परिवर्जयेत् ॥

अर्थ—जिसके हाथ पैर और श्वास शीतल हों तथा श्वास टूट टूट जावे अथवा काकके समान श्वास लेवे उसे धीर वैद्य त्यागदेवे. ये सद्यः मरणके चिह्न हैं ॥

निद्रा न च्छिद्यते यस्य यो वा जागर्ति सर्वदा।
मुह्येद्वा वक्तुकामस्तु प्रत्याख्येयः स जानता ॥

अर्थ-जो सोयाही करे जागे नहीं, अथवा जो सदैव जागा करे सोवे नहीं और जब बोला चाहे तभी मूर्च्छित हो-जावे उसे वैद्य त्यागदेवे ॥

उत्तरोष्ठश्च यो लिह्यादुद्गारांश्च करोति यः ।
प्रेतैर्वा भाषते सार्द्धं प्रेतरूपं तमादिशेत् ॥

अर्थ-जो ऊपरके होठको चाटाकरे और जो वारंवार डकार लेवे, तथा मृत पुरुषोंके साथ जो भाषण करे उसको प्रेतरूपही जानना ॥

स्वेभ्यः सरोमकूपेभ्यो यस्य रक्तं प्रवर्तते ।
पुरुषस्य विषार्त्तस्य सद्यो जह्यात्स जीवितम् ॥

अर्थ-अब शरीर देश विशेषाश्रितव्याधिविशेष अरिष्टक-तोंको दिखाते हैं-जैसे जिसके रोमांचोंमेंसे रुधिर बहनेलगे वो विषार्त्त पुरुष तत्काल जीवनको परित्याग करे ॥

वाताष्ठीला तु हृदये यस्योर्ध्वमनुयायिनी ।
रुजान्नविद्वेषकरी स परासुरसंशयम् ॥

अर्थ-जिसके वाताष्ठीला हृदयमें प्रगट हो ऊपरको चढे और उसमें पीडा हो तथा अन्नमें प्रीति न होवे, वह रोगी मरेगा ऐसा जाने ॥

अनन्योपद्रवकृतः शोफः पादसमुत्थितः ।
पुरुषं हन्ति नारीं तु मुखजो गुह्यजो द्वयम् ॥

अर्थ–पैरोंमें सूजन हो और उसमें शोफकेही उपद्रव श्वास प्यास आदि होवें, वो पुरुषको नाश करे और मुखसे उठी सूजन उक्त उपद्रवोंकरके युक्त हो वह स्त्रीको नाश करे और गुदाकी सूजन स्त्रीपुरुष दोनोंको नष्ट करती है ॥

अतिसारो ज्वरो हिक्का छर्दिः शूनांडमेढ्ता ।
श्वासिनो कासिनो वापि यस्य तं परिवर्जयेत् ॥

अर्थ–खांसी श्वासवाले रोगीके अतिसार, ज्वर, हिचकी और वमन ये उपद्रव होतेहों तथा अंडकोश और लिंग भगपर सूजन हो उसे वैद्य त्यागदेवे ॥

स्वेदो दाहश्च बलवान् हिक्का श्वासश्च मानवम् ।
बलवंतमपि प्राणैर्वियुज्यंति न संशयः ॥

अर्थ–जिसके पसीने और दाह अत्यन्त हो ऐसे बलवान पुरुषको हिचकी और श्वासरोग प्राणरहित करते हैं इसमें सन्देह नहीं है ॥

श्यामा जिह्वा भवेद्यस्य सव्यं चाक्षि निमज्जति ।
मुखं च जायते पूति यस्य तं परिवर्जयेत् ॥

अर्थ–जिसकी जीभ काली हो और दहना नेत्र बैठजावे तथा मुखमेंसे दुर्गंध आवे उसको वैद्य त्यागदेवे ॥

वक्त्रमापूर्यतेऽश्रूणां स्विद्यतश्चरणावुभौ ।
चक्षुश्चाकुलतां याति यमराष्ट्रं गमिष्यतः ॥

अर्थ-जिसका मुख आंसुओंसे भरजावे और दोनों पैर पसीजैं तथा नेत्र जिसके व्याकुल होजांय वह यमपुरीको जायगा ऐसा जाने । यह रोगी प्रहर अथवा दो घडीमें मरेहै ॥

अतिमात्रं लघूनि स्युर्गात्राणि गुरुकाणि च ।
यस्याकस्मात्स विज्ञेयो गंता वैवस्वतालयम् ॥

अर्थ-जिस रोगीका भारी देह अकस्मात् अत्यन्त हलका होजावे वह रोगी यमराजके घर जानेवाला है ॥

पङ्कमत्स्यवसातैलघृतगंधांश्च ये नराः ।
मृष्टगंधांश्च ये वांति गंतारस्ते यमालयम् ॥

अर्थ-जिन रोगियोंकी देहमेंसे कीच, मछली, वसा, तेल और घृतकीसी बास आवे, तथा जो दिव्य सुगंधवान् वमन करें वे यमालयको जायँगे । यह एक वर्षमें मरते हैं ॥

यूका ललाटमायांति बलिं नाश्नन्ति वायसा ।
येषां वापि रतिर्नास्ति यातारस्ते यमालयम् ॥
ज्वरातीसारशोकाः स्युर्यस्यान्योऽन्यावसादिनः ।
प्रक्षीणबलमांसस्य नासौ शक्यश्चिकित्सितुम् ॥

अर्थ-जिनके मस्तकपर जूआं आवे और कौआ काक बलिको न खाँय तथा जिनको कहीं सुख न हो वो यमालय

जानेवाले हैं ऐसा जानना, यह अरिष्ट एक वर्षका है । जिसके परस्पर उपद्रव करता ज्वर अतिसार और सूजन हो तथा बल मांस ये क्षीण होजांय वह रोगी चिकित्साके योग्य नही है ॥

क्षीणस्य यस्य क्षुत्तृष्णे हृद्यैर्मिष्टैर्हितैस्तथा ।
न शाम्यतोऽन्नपानैश्च तस्य मृत्युरुपस्थितः ॥

अर्थ–जिस क्षीणपुरुषकी भूख प्यास हृद्य मिष्ट और हितकारी अन्न जलसेभी शांति न हो उसकी मृत्यु खडी हुई है ऐसा जाने ॥

प्रवाहिका शिरःशूलं कोष्ठशूलं च दारुणम् ।
पिपासा बलहानिश्च तस्य मृत्युरुपस्थितः ॥

अर्थ–जिस रोगीके प्रवाहिका, मस्तकशूल, घोर उदरशूल प्यास और बलहानि हो उसकी मौत खडी है ऐसा जानो ॥

विषमेणोपचारेण कर्मभिश्च पुराकृतैः ।
अनित्यत्वाच्च जंतूनां जीवितं निधनं व्रजेत् ॥

अर्थ–अब यह कहते हैं कि, इस मनुष्यके अरिष्ट किस तरह उत्पन्न होतेहैं जिनसे यह निश्चय मरताहै। तहां विषमचिकित्सा करनेसे और पूर्वजन्मके कर्मों करके, तथा प्राणिमात्रोंको अनित्य होनेसे, जीवोंका जीवन विनाशको प्राप्त होता है ॥

प्रेतभूतपिशाचाश्च रक्षांसि विविधानि च ।
मरणाभिमुखं नित्यमुपसर्पंति मानवम् ॥

तानि भेषजवीर्याणि प्रतिघ्नंति जिघांसया ।
तस्मान्मोघाः क्रियाः सर्वा भवंत्येव गतायुषः ॥

अर्थ-मरणके समय सब क्रिया निष्फल क्यों होजाती हैं इसवास्ते कहते हैं कि, इसमनुष्यके मरणसमय प्रेत, भूत, पिशाच, अनेकप्रकारके ब्रह्मराक्षस आदि नित्य इसके मारनेको समीप आते हैं, इसीसे गतायु मनुष्यकी सर्वक्रिया निष्फल होजाती है । इति ॥

अथातः स्वभावविप्रतिपत्तिरूपमाध्यायं व्याख्यास्यामः ।

अर्थ-अब स्वभाव (प्रकृति) विप्रतिपत्तिरूप अध्यायकी व्याख्या करेंगे-यहां स्वभावशब्दके अनंतर आदिशब्द लुप्त है अर्थात् स्वभावादि विप्रतिपत्तिरूप अध्यायकी व्याख्या करेंगे-

स्वभावप्रसिद्धानां शरीरैकदेशानामन्यभावित्वं मरणाय । तद्यथा-शुक्लानां कृष्णता कृष्णानां शुक्लता रक्तानामन्यवर्णत्वं स्थिराणामस्थिरत्वं मृदूनां स्थिरता चलानामचलत्वमचलानां चलता पृथूनां संक्षिप्तत्वं संक्षिप्तानां पृथुता दीर्घाणां ह्रस्वत्वं ह्रस्वानां दीर्घताऽपतनधर्मिणां पतनधर्मित्वं पतनधर्मिणामपतनधर्मित्वमकस्माच्च शैत्योष्ण्यस्नैग्ध्यरौक्ष्यप्रस्तम्भवैवर्ण्यावसदनाश्चाङ्गानाम् ॥

अर्थ–जो देहमें स्वभावसिद्धपदार्थ हैं उनका शरीरके एकदेशमें विपरीत होजाना मरणके अर्थ है । जैसे अकस्मात् सफेद पदार्थोंका काला होजाना और कालेका सफेद होजाना लालपदार्थ (होठ, तालुआदि) का सफेद काला पीला होजाना स्थिरपदार्थोंका अस्थिर होना और (केश, श्मश्रु आदि कठोर पदार्थोंका नर्म हो जाना और नर्मपदार्थ (मांस, रुधिरादिकोंका) कठोर हो जाना इसीप्रकार चलपदार्थोंका स्थिर होजाना और अचल पदार्थोंका चलायमान होना, मोटेका सुकडजाना, सुकडेहुओंका मोटा होना, दीर्घोंका ह्रस्व होना और ह्रस्वोंका दीर्घ होना, विना गिरनेवालोंका गिरजाना और गिरनेवालोंका स्थिर होना तथा शीतलता,गरमी, चिकनाई,रुखाई,स्तब्धता, विवर्णता और विकलता ये अंगोंके विपरीत होना मरणके अर्थ जानना ॥

स्वेभ्यःस्थानेभ्यःशरीरैकदेशानामवस्रस्तोक्षिप्तभ्रांतावक्षिप्तपतितविमुक्तानिर्गतांतर्गतगुरुलघुत्वानि ॥

अर्थ–शरीरके एकदेशोंका अपने स्थानसे शिथिल होना, उनको ऊपरको जाना, नेत्रादिकोंका भ्रमण होना, तिरछा गिरना, शिरग्रीवादिकोंका गिरना, संधिआदिका छूटना, जिह्वाआदिका निकलना, जिह्वा नेत्रादिकोंका भीतर प्रवेश होना, बाहु शिर आदि भारी, हलकोंका विपरीत होना ये लक्षण अरिष्ट करते हैं ॥

प्रवालवर्णःव्यङ्गप्रादुर्भावोऽप्यकस्मात् । शिराणांच दर्शनं ललाटे नासावंशे वा पिडकोत्पत्तिः। गोमये चूर्णप्रकाशस्य वा रजसो दर्शनमुत्तमांगे निलयनं वा कपोतकंकप्रभृतीनां मूत्रपुरीषवृद्धिरभुंजानानां तत्प्रणाशो भुंजानानां स्तनमूलहृदयोरःसु च शूलोत्पत्तयः मध्ये शूनत्वमन्तेषु परिम्लायित्वं विपर्ययो वा तथार्द्धाङ्गे श्वयथुः ॥

अर्थ-अकस्मात् लालवर्णका व्यङ्गरोग प्रगट हो लालवर्णकी नस दीखनेलगे, मस्तकमें और नासिकाकी हड्डीमें पिडिकाकी उत्पत्ति हो,मस्तकमें गोबरकी धूलसमान रज दीखे तथा कबूतर कंकआदि पक्षियोंका मस्तकपर बैठना, विना भोजनके मलमूत्रकी वृद्धि होना अर्थात् अधिक उतरना और भोजन करेहुओंको मलमूत्रका नाश होना, स्तनमूल, हृदय, छाती इनमें शूलकी उत्पत्तिहो और जिसके देहका मध्य भाग सूज जाय और अंतके भाग मुरझाए हुयेसे होजावें अथवा अंतके भाग (हाथ पैरआदि) सूजजाँय और बीचका भाग मुरझायासा हो अथवा अर्द्धांगमें सूजन हो उसको अरिष्ट है ऐसा जानना यह एक महीनेका है-

शोषोङ्गपक्षयोर्वा नष्टहीनविकलविकृतिस्वरता ।
विवर्णपुष्पप्रादुर्भावो वा दन्तनखशरीरेषु ॥

यस्य वाप्सु कफपुरीषरेतांसि निमज्जंति । यस्य वा दृष्टिमंडले भिन्नविकृतानि रूपाण्यालोक्यंते । स्नेहाभ्यक्तकेशांग इव यो भाति । यश्च दुर्बलो भक्तद्वेषातिसाराभ्यां पीड्यते । कासमानश्च तृष्णाभिभूतः । क्षीणश्छर्दिभक्तद्वेषयुक्तःसफेनपूयरुधिरोद्वामी हतस्वरः शूलाभिपन्नश्च मनुष्यः ॥

अर्थ–अंगोंका सूखना अथवा आधे देहका शोष होना, एवं स्वर अत्यन्त क्षीण होजाय वा विकलस्वर होजाय।(गद्गदादि स्वर होजाय) वा विकृत अर्थात् स्वभावसे विपरीत होजावे तथा दाँत, नख और शरीरमें विवर्ण पुष्प अर्थात् दुष्टरंगकी विंदु प्रगट होजावे । जिसके जलमें कफ, मल और वीर्य डूबजावें और नेत्रोंके सामने भयानक अनेकप्रकार (तीनशिर, शिररहित) रूप देखे । तेल लगाएहुए बाल रूखेसे देखे और जो दुर्बलपुरुष अन्नसे द्वेष और अतिसार करके पीडित हो जब खाँसै तभी तृषासे पीडित हो, क्षीणरोगी, वमन, अन्न द्वेषयुक्तहो । तथा झागयुक्त राध रुधिरकी वमन करै । स्वर बैठजावे और शूलसे पीडित हो उसको अरिष्ट जानना ॥

शूनकरचरणवदनः क्षीणोऽन्नद्वेषी स्रस्तपिंडिकांसपाणिपादो ज्वरकासाभिभूतः यस्तु पूर्वाह्णे भुक्तमपराह्णे छर्दयत्यतिसार्यते वा ज्वरकासाभिभूतः स श्वासान्म्रियते । बस्तवद्विलपन् यश्च

भूमौ पतति स्रस्तमुष्कः स्तब्धमेढ्रो भग्नग्रीवः प्रणष्टमेहनश्च मनुष्यः ॥

अर्थ-जिसके हाथ, पैर, मुख सूजेहुए हों, अन्य अंग क्षीण होगएहों, अन्नमें अरुचि, शिथिल हैं घोटू, कंधे,हाथ और पैर जिसके ज्वर खांसी करके युक्त एवं जो प्रातःकालमें भोजन करे हुएको अपराह्णमें वमन करदेवे और जिसके बिनपचा अन्न दस्तके मार्ग होके निकले और ज्वर खाँसीसे व्याप्तहो वो श्वास रोगसे मरे । एवं बकरेके शब्दसमान विलाप करता हुआ पृथ्वी में गिरपडे । अंडकोशस्थान छूटजावे लिंग स्तंभित होजाय नार गिरपडे तथा लिंग भीतरको चलाजाय उसको अरिष्ट जानना ॥

प्राग्विशुष्यमाणहृदय आर्द्रशरीरो यश्च लोष्टं लोष्टेनाभिहन्ति काष्ठं काष्ठेन तृणानि वा छिनत्ति अधरोष्ठं दशत्युत्तरोष्ठं वा लेढि ॥ आलुञ्चति वा कर्णौ केशांश्च देवद्विजगुरुसुहृद्वैद्यांश्च द्वेष्टि ॥

अर्थ-जिस पुरुषका सब देह गीला रहते प्रथम हृदयही सूखजावे उसको पक्षभरका अरिष्ट है और मिट्टीके ढेलेसे ढेलेको तोडे लकडीसे लकडीको और तिनकोंको तोडे नीचेके होठको दातोंसे डसे और ऊपरके होठको चाटे और कान माथेके बालोंको तोडे । एवं देव, ब्राह्मण, गुरु, सुहृद और वैद्य इनसे द्रोह करे तो उसको १ वर्षका अरिष्ट जानना ॥

यस्यवक्रानुवक्रगाग्रहागर्हितस्थानगताः पीडयंतिजन्मर्क्षंवायस्योल्काशनिभ्यामभिहन्यतेहोरा वागृहदारंशयनासनयानवाहनमणिरत्नोपकरणगर्हितलक्षणनिमित्तप्रादुर्भावो वेति ॥

अर्थ–जिसके वक्रीग्रह उपस्थितराशिको छोडकर पूर्व भुक्त राशिपर आजावें और मार्गीग्रह ये दुष्टस्थानपर आनकर जन्मनक्षत्रको पीडित करैं तथा जिसका जन्मनक्षत्र और होरा उल्का (जिसे तारा टूटा कहते हैं) और बिजलीकरके हत हो एवं घर, स्त्री, शय्या, आसन, सवारी; वाहन, मणि, रत्न और सामग्री आदिमें दुष्ट लक्षण इनके निमित्त करके अरिष्टकी उत्पत्ति होती है ॥

चिकित्स्यमानः सम्यक्च विकारो योऽभिवर्द्धते ।
प्रक्षीणबलमांसस्य लक्षणं तद्गतायुषः ॥
निवर्त्तते महाव्याधिः सहसा यस्य देहिनः ।
न चाहारफलं यस्य दृश्यते स विनश्यति ॥

अर्थ–जिस रोगीका उत्तम रीतिसे चिकित्सा करते २ भी रोग बढे और बल मांस जिसके क्षीण होजावें उसको गतायु जानना । जिस रोगीका घोर रोग अकस्मात् जातारहे और जो भोजन करे उसका कुछ देहमें (पुष्टाई क्षुधा शांति आदि) फल न देखपडे वो रोगी अवश्य मरे ॥

ज्ञानसंबोधनार्थं तु लिङ्गैर्मरणपूर्वकैः ।
पुष्पितानुपदेक्ष्यामो नरान्बहुविधान्बहून् ॥

नानापुष्पोपमोगंधोयस्यवातिदिवानिशम् ।
पुष्पितस्यवनस्येवनानाद्रुमलतावतः ॥
तमाहुः पुष्पितंधीरानरंमरणलक्षणैः ।
स वै संवत्सराद्देहं जहातीतिविनिश्चयः ॥

अर्थ—मरणपूर्वक लक्षणा करके कालज्ञानके जाननेके लिये अनेक प्रकारके बहुतसे पुष्पित मनुष्योंको कहताहूं । अनेक वृक्ष लतावान् फूलेहुए वनकीसी जिसके देहमें दिन रात्रि फूलोंकीसी सुगंध आवे उसको धीर वैद्य पुष्पित कहते हैं. वो १ वर्षके भीतर निश्चय मरणको प्राप्त हो ॥

एवमेकैकशः पुष्पैर्यस्यंगधःसमोभवेत् । इष्टैर्वाय-
दिवानिष्टैः सचपुष्तिउच्यते ॥ तद्यथाचन्दनंकुष्ठं
तगराग्गुरुणीमधु । माल्यमूत्रपुरीषेवामृतानिकुणपा-
निवा॥येचान्येविविधात्मानोगंधाविविधयोनयः ।
तेऽप्यनेनानुमानेनविज्ञेयाविकृतिंगते ॥

अर्थ—उसीप्रकार एक एक फूलकी पृथक् २ सुगंध या दुर्गंध आवे तो उसको पुष्पित कहते हैं जैसे-चंदन, कूठ, तगर, अगर, सहत, माला, मूत्र, मल, मुरदेके समान दुर्गंध तथा और अनेक प्रकारकी आपको दुर्गंध आवे वोभी इसी अनुमानसे अरिष्टगत मनुष्यके देहमें जानना चाहिये ॥

इदंचाप्यतिदेशार्थलक्षणंगंधसंश्रयम् ।
वक्ष्यामोयदभिज्ञाय भिषङ्मरणमादिशेत् ॥

अर्थ–इसप्रकार वैद्योंके जाननेके लिये गंधसंश्रयलक्ष-णोंको कहूंगा-जिन लक्षणोंको वैद्य जानकर रोगीका मरण कहे [अर्थात् ये रोगी इतने दिनमें मरेगा] ॥

वियोनिविज्वरोयस्य गन्धोगात्रेषुदृश्यते ।
इष्टोवायदिवानिष्टोनसजीवतितांसमाम् ॥
एतावद्गंधविज्ञानंरसज्ञानमतः परम् ।

अर्थ–जिस मनुष्यके देहमें पशुपक्षीआदिकीसी और अ-नेक प्रकारके रोगोंकीसी गंध आवे, चाहिये वो अच्छी हो वो मनुष्य वर्ष नहीं जीवे हमने यह गंधविज्ञान कहा अब रसज्ञानको कहतेहैं ॥

आतुरेषु शरीरेषु वक्ष्यामोविधिपूर्वकम् । योरसः प्रकृतिस्थानांनराणांदेहसंभवः ॥ सएषांचरमेकाले विकारान्भजतेद्वयान् । कश्चिदेवास्यवैरस्यमत्यर्थ-मुपपद्यते ॥ स्वादुत्वमपरंचापिविपुलंभजतेरसः । तमनेनानुमानेन विद्याद्विकृतिमागतम् ॥

अर्थ–अब रोगीके शरीरमें रसज्ञानको विधिपूर्वक कहैंगे नैरोग्य पुरुषोंके देहका रस जो स्वस्थावस्थामें होता है वही मरणके समय दो प्रकारके भावको जाता है। किसीके तो मुखमें विरसता होजाती है और किसीके मुखमें अत्यंत स्वा-दुता आजाती है उसको वैद्य अनुमानद्वारा जाने कि, विकृति आनपहुँची है ॥

मनुष्योहिमनुष्यस्यकथंरसमवाप्नुयात् । मक्षिका-
श्चैवयक्षाश्चदंशाश्चमशकैः सह ॥ विरसादपसर्पंतिज-
न्तोःकायान्मुमूर्षतः । अत्यर्थंरसकंकायंकालपक्क-
स्यमक्षिकाः ॥ अपिस्नातानुलिप्तस्यभृशमायांति
सर्वशः।यान्येतानिमयोक्तानिलिंगानिरसगंधयोः ॥
पुष्पितस्यनरस्यैतैः फलंमरणमादिशेत् ॥

अर्थ–कदाचित् कोई प्रश्न करे कि, मनुष्य मनुष्यके देहका रस कैसे जानसक्ता है इसलिये धन्वन्तरि कहतेहैं कि, जिस समय यह मनुष्य मरणोन्मुख होताहै तब इस मनुष्यकी देह विरस होजाती है अत एव उस गंधके प्रभावसे मक्खी यक्ष मच्छर डास इत्यादि इसके ऊपर बहुत बैठते हैं और जब कालकरके अत्यंत देह पक्क होजाता है तब इस प्राणीके स्नान करनेके पश्चात् और चंदन आदि लगानेपरभी मक्खी पीछा नहीं छोडती तब वैद्य जानलेवे कि, इस मनुष्यके देह-का रस पलटगया है यह हमने पुष्पित मनुष्यके रस और गंध-के लक्षण कहे । इससे वैद्य रोगीका मरण कहे ॥

दन्तपंक्त्युत्तरे न्यस्तं न विशेदंगुलित्रयम् ।
स याति सप्तरात्रेण निश्चितं यमसादनम् ॥

अर्थ–जिसके दांतोंके भीतर देनेसे तीन उंगली न जावें, वो निश्चय सात दिनमें मरे ॥

छायां विधोर्न ध्रुवमृक्षमालामालोकयेद्यो
न च मातृचक्रम् । खंडं पदं यस्य च कर्द-
मादौ कफश्च्युतो मज्जति चाम्बुचुम्बी ॥

अर्थ–जो मनुष्य चंद्रमाके कलंकको, ध्रुवको, नक्षत्रोंको और मातृमंडलको न देखे और कीच आदिमें पैर रखनेसे आधा पैरकाही चिह्न दीखे और जलमें कफ गेरनेसे जलको लेकर नीचे बैठजावे, उसे अरिष्ट जानना चाहिये ॥

उरः पुरः शुष्यति यस्य चार्द्रं न मांति तिस्रोंगु-
लयश्च वक्त्रे । स्नातस्य मूर्द्धन्यपि धूमवल्लीनिली-
यते रिक्तमुखः खगो वा ॥

अर्थ–जिसका देह चंदन अथवा जल आदिसे गीला होकर प्रथम छाती सूखे और जिसके मुखमें तीन उंगली न मावें और जलमें स्नान करेहुएके मस्तकमें धूम [धूआं] की शिखा उठे एवं जिसके मस्तकपर फलधान्यादिसे रीतेचोंचवाले पक्षी बैठें उसको अरिष्ट है ऐसा जानना ॥

नाकीर्णकर्णः शृणुयाच्च घोषं नो वासुभुक्तोऽपि
धृतिं न धत्ते । निःश्रीरकस्मात्सुतरां च सुश्रीः
कृशः स्थवीयानपि योप्यकस्मात् ॥

अर्थ–जो मनुष्य उंगलियोंसे कानोंको बंदकर कानोंके भीतरका स्वाभाविक शब्द न सुने और जो बहुत भोजन करने

पर भी तृप्त न होवे, तथा अशोभित अकस्मात् शोभावान् होजाय और शोभावान् अशोभित होजाय, एवं जो कृश है वो मोटा होजावे और मोटा मनुष्य अकस्मात् पतला होजावे तो उसको अरिष्ट जानना ॥

अतीव तुच्छं बहुचाल्पहेतोरतीतसात्म्यः सदसत्प्रवृत्तौं । अप्यंगुलिक्रांतविलोचनांतो न मेचकं चान्द्रकमीक्षते यः ॥

अर्थ-जो ज्वरादि रोगके विना अत्यन्त थोडा भोजन करनेलगे और भस्मकादि रोगके बिना बहुत भोजन करनेलगे और जो उत्तम विषय तथा दुष्टविषयोंमें अपने सात्म्यको छोडदेवे अर्थात् जो उत्तम कर्मकर्त्ता वो दुष्टकर्म करनेलगे और दुष्ट कर्मवाला अच्छे कर्म करनेलगे एवं उंगलियोंसे नेत्रोंको ढकनेपर मोरचंद्रिकाके समान तिलमिले अनुभवसिद्धको न देखे उसको अरिष्ट जानना ॥

मध्येललाटं मणिबंधधारी न चालिपकां पश्यति यः कलावीम् । अहेतुकं यः शवगन्धिगात्रः सर्वत्र सीमंतितमूर्धजो वा ॥

अर्थ-जो ललाटपर पहुंचेको धरकर थोडाभी पहुंचेकी [कलाईको] न देखे और विनाकारण जिसमें मुरदेकीसी वास आने लगे और जिसके समस्त मस्तक बालोंकी वेनीसी गुँथजावे उसको अरिष्ट जानना ॥

अपिक्षरद्रोमनखः शरीरात्सद्यः स्रवद्वामविलोचनो वा । निरीक्षते सत्त्वममानुषं वा विस्रस्तनासा-नयनश्रुतिर्वा ॥

अर्थ—जिसके शरीरसे रोमांच और नख स्वयं उखडकर गिरनेलगें और जिसके वामनेत्रसे आँसू बहनेलगें और जो भूत पिशाचादि प्राणियोंको देखे, एवं जिसके नाक, नेत्र और कान वे शिथिल हो जावें, उसको आरिष्ट जानना चाहिये ॥

फलाग्निजलवृष्टीनां पुष्पधूमाम्बुदा यथा ।
ख्यापयंति भविष्यत्वं तथारिष्टानि पंचताम् ॥

अर्थ—जैसे—पुष्प, धूँआ और बादल, ये फल अग्नि और जलके भविष्यको प्रगट करते हैं, उसीप्रकार अरिष्ट मरणको सूचित करता है । अर्थात् फूल फलको और धूँआ होनेसे अग्नि, एवं बादल होनेसे पानी वर्षनेकी भविष्य सूचना होती है । उसीप्रकार अरिष्टद्वारा मरणका बोध होता है, अरिष्ट दो प्रकारका है एक नियत [निश्चित] और दूसरा अनियत [अनिश्चित] है ॥

तानि सौक्ष्म्यात्प्रमादाद्वा तथैवाशुव्यतिक्रमात् ।
गृह्यन्ते नोद्धतान्यज्ञैर्मुमूर्षोर्नत्वसम्भवात् ॥

अर्थ—उन प्रगटहुये अरिष्टोंको मरणेच्छु मूढमनुष्य अत्यंत सूक्ष्म होनेसे और शीघ्र नष्ट हो जानेसे नहीं जानसक्ता अर्थात् वो परमाणुके समान अत्यन्त सूक्ष्म होते हैं । और रोगी मत-

वालासा होता है इसकारण तथा जिस समय अरिष्ट हुआ उसी समय रोगी मरगया इन सबकारणोंसे मूर्ख नहीं जानते किंतु यह नहीं है कि, वो अरिष्ट उनके न होतेहों इसकारणको नहीं जाने ॥

नक्षत्रपीडा बहुधा यथाकालाद्विपच्यते ।
तथैवारिष्टपाकं च ब्रुवते बहुधा जनाः ॥

अर्थ-अब यह कहते हैं कि, ये अरिष्ट पीडा पचीसवर्षादिमें क्यों होती है । इसवास्ते यह है कि, जैसे नक्षत्रजनित पीडा प्रायः कालांतरमें पचती है उसीप्रकार अरिष्टफलको बहुतसे मनुष्य कहते हैं ॥

असिद्धिमाप्नुयाल्लोके प्रतिकुर्वन्गतायुषः ।
अतोरिष्टानि यत्नेन लक्षयेत्कुशलो भिषक् ॥

अर्थ-जो वैद्य गतायु अर्थात् मरणोन्मुखकी चिकित्सा करताहै वो इसलोकमें सिद्धि (किंचित्साफलधनयशादि) को नहीं प्राप्त होता, अतएव कुशलवैद्य यत्नपूर्वक अरिष्टोंको देखे।

ध्रुवं तु मरणं रिष्टे ब्राह्मणं तत्किलामलैः ।
रसयानतपोजप्यतत्परैर्वा निवार्यते ॥

---

१ अथ संगृहीतश्लोकः-व्यस्ताङ्गादिस्वभावा भुवि च पददलं भाविकारोऽम्बुपूर्वे स्वस्थोऽब्जांकं न पश्येत्तनुमितरदृशि स्वाक्षि वा पीडयते यः ॥ ध्रौवादीन्वाथ पश्येद्द्रमहनि च तडिच्चापपूर्वं निरभ्रे सूर्येन्द्वोश्छिद्रपूर्वंमृतिकृदिह च मृत्युंजयाज्जाप्यहोमौ ॥ १ ॥

अर्थ–अब दोषज अरिष्टोंकरके मरण निश्चयको दिखाते हैं कि, अरिष्ट होनेसे इसी प्राणीका अवश्य मरण होताहै। वो अरिष्ट जन्ममरण रागादिदोषरहित ब्राह्मणोंकी सेवा, रसायन औषधोंका सेवन, तपश्चरण और गायत्र्यादि मंत्रोंके जप करनेसे निवारण होतेहैं। यह केवल अनियत अरिष्ट भिषक्में उपाय है। और नियतहै वो दानपुण्य आदि किसी उपायसे दूर नहीं हो।

अथ छायापुरुषलक्षणम् ।

अथातःसंप्रवक्ष्यामि छायापुरुषलक्षणम् ।
येन विज्ञानमात्रेण त्रिकालज्ञो भवेन्नरः ॥

अर्थ–अब हम छाया पुरुषके लक्षण कहतेहैं–जिसके जाननेसे यह प्राणी त्रिकालज्ञ (भूत–भविष्य–वर्त्तमानका जाननेवाला) होता है ॥

कालो दूरस्थितस्यापि येनोपायेन लक्ष्यते ।
तं वक्ष्यामि समासेन यथोक्तं शंभुना पुरा ॥

अर्थ–दूरस्थितभी काल जिस उपायकरके दृष्टिगोचर हो उसको मैं संक्षेपकरके कहताहूं जैसे पहिले शिवजीने कहे हैं ॥

एकांते विजने गत्वा कृत्वादित्यं च पृष्ठतः ।
निरीक्षेत निजां छायां कंठदेशे समाहितः ॥

अर्थ–कालज्ञानका परीक्षक मनुष्य निर्जन एकांत वनमें

जाय समानभूमिमें सूर्यको पिछाडी करके सीधा खडा हो फिर अपनी छायाके कंठदेशमें देखताहुआ सावधानीसे परीक्षा करे॥

ततश्चाकाशमीक्षेत ततः पश्यति शंकरम्। ॐ ह्रीं परब्रह्मणे नमः इति मंत्रम् अष्टोत्तरशतवारं जपेत् ॥

अर्थ--बराबर [दो घडीपर्यंत छायाको देखाकरे] फिर उस छायापरसे दृष्टिको उठाकर आकाशकी तरफ देखे तो साक्षात् शिवको देखेगा। जिस समय छाया देखनेको खडा हो तब १०८ बार इसमंत्रको पढे "ॐ ह्रीं परब्रह्मणे नमः" ॥

शुद्धस्फटिकसंकाशं नानारूपधरं हरम् ।
षण्मासाभ्यासयोगेन भूचराणां पतिर्भवेत् ॥

अर्थ–इस प्रकार करनेसे शुद्धस्फटिकमणिके समान अनेक रूपधारणकर्ता शिवको देखे इसप्रकार छः महीने करनेसे संपूर्ण प्राणिमात्रका अधिपति हो ॥

वर्षद्वयेन हे नाथ कर्त्ता हर्त्ता स्वयं प्रभुः ।
त्रिकालज्ञत्वमाप्नोति परमानंदमेव च ॥

अर्थ–दो वर्ष इस क्रियाके साधन करनेसे स्वयं कर्ता हर्ता और त्रिकालका जाननेवाला परम आनंदयुक्त होवे ॥

सतताभ्यासयोगेन नास्ति किंचन दुर्लभम् ॥

अर्थ–इसप्रकार बराबर नित्यप्रति साधन करता रहे तो इस संसारमें ऐसी कोई वस्तु नहीं है जो इस साधकको प्राप्त न हो ।

तद्रूपं कृष्णवर्णं यः पश्यति व्योम्नि निर्मले ।
षण्मासान्मृत्युमाप्नोति स योगी नात्र संशयः ॥

अर्थ–यदि यह रोगी आकाशमें उस छाया पुरुषका वर्ण कालेरंगका देखे तो छः महीनेमें निःसंदेह मृत्यु हो ॥

पीते व्याधिभयं रक्ते नीले हत्यां विनिर्दिशेत् ।
नानावर्णस्वरूपेस्मिन्नुद्वेगो जायते महान् ॥

अर्थ–यदि पीलावर्ण देखे तो इसको रोग हो, लाल देखे तो भय हो और नीलेवर्णकी छाया देखे तो हत्या लगे एवं अनेक प्रकारके रंगकी छाया देखे तो इसके चित्तमें घोर उद्वेग होवे ॥

पादे गुल्फे च जठरे विनष्टे मृत्युमादिशेत् ।
अर्धवर्षेण वर्षेण क्रमाद्वर्षद्वयेन च ॥

अर्थ–छायापुरुषके पैर टकना और पेट न दीखनेसे क्रम-पूर्वक छः महीने, वर्षदिन और दोवर्षमें मृत्युहो अर्थात् पैर न दीखनेसे छःमहीनेमें टकना न दीखनेसे वर्ष दिनमें और पेट न दीखनेसे दो वर्षमें मरे ॥

विनष्टे दक्षिणे बाहौ स्वबंधुर्म्रियते ध्रुवम् ।
वामे बाहौ तथा भार्या विनश्यति न संशयः ॥

अर्थ–छाया पुरुषका दहिना हाथ न दीखनेसे अपना भाई मरे और बायाँ हाथ न दीखनेसे अपनी स्त्री मरे इसमें संदेह नहीं है ॥

शिरोदक्षिणबाह्वोस्तु विनाशो मृत्युमादिशेत् ।
अशिरा मासि मरणं विना जंघे दिनेन वा ॥
अष्टभिः कंधरानाशे छायालुप्ते च तत्क्षणात् ॥

अर्थ—छायापुरुषके शिर और दहिना हाथ न दीखनेसे मृत्यु हो. यदि कबंध दीखे तो महीनेमें मरे और विना पीडरोंके दीखे तों एकदिनमें मरै, कंधा न दीखनेसे आठदिनमें और सर्व छाया न दीखे तो तत्काल मृत्यु हो, परंतु यह ज्ञान योगियाको होताहै अन्यको नहीं ॥

॥ इति कालज्ञानं भाषाटीकासमेतं समाप्तम् ॥



हमारे प्रकाशनों की अधिक जानकारी व खरीद के लिये हमारे निजी स्थान :

खेमराज श्रीकृष्णदास
अध्यक्ष : श्रीवेंकटेश्वर प्रेस,
९१/१०९, खेमराज श्रीकृष्णदास मार्ग,
७ वी खेतवाडी बॅक रोड कार्नर,
मुंबई - ४०० ००४.
दूरभाष/फैक्स-०२२-२३८५७४५६.

खेमराज श्रीकृष्णदास
६६, हडपसर इण्डस्ट्रियल इस्टेट,
पुणे - ४११ ०१३.
दूरभाष-०२०-२६८७१०२५,
फैक्स -०२०-२६८७४९०७.

गंगाविष्णु श्रीकृष्णदास,
लक्ष्मी वेंकटेश्वर प्रेस व बुक डिपो
श्रीलक्ष्मीवेंकटेश्वर प्रेस बिल्डींग,
जूना छापाखाना गली, अहिल्याबाई चौक,
कल्याण, जि. ठाणे, महाराष्ट्र - ४२१ ३०१
दूरभाष/फैक्स- ०२५१-२२०९०६१.

खेमराज श्रीकृष्णदास
चौक, वाराणसी (उ.प्र.) २२१ ००१.
दूरभाष - ०५४२-२४२००७८

KHEMRAJ SHRIKRISHNADASS

